(गाथा) १४४ है। अन्तिम चार लाईनें। १४४। कहते हैं कि क्रियाकाण्ड किया। चाहे जितनी करे तो भी उससे कहीं मुक्ति और धर्म नहीं है। परन्तु **आसन्नभव्यतारूपी गुण का उदय होने पर...** अन्तर में संसार के निकट आकर, जहाँ अल्प काल मोक्ष (प्राप्ति में) रहता है। आहाहा! ऐसा आसन्न-निकट भव्यतारूपी गुण का उदय होने पर **परमगुरु के प्रसाद से...** आहाहा! ऐसा लिया। परम गुरु का प्रसाद अर्थात् उनके निकट सुनना। उनके प्रसाद से होता नहीं, परन्तु सुनने में निमित्तपना होता है। गुरु-प्रसाद सो प्राप्त परम तत्त्व। दूसरे प्रकार से कहें तो अज्ञानी को गुरु परमतत्त्व का उपदेश देते हैं। इसमें से ऐसा निकला है। आहाहा! अज्ञानी को धर्मी-गुरु यह उपदेश देते हैं कि परमतत्त्व का उपदेश देते हैं। परमतत्त्व ऐसा जो आत्मा आनन्दस्वरूप। आया न यह? रामजीभाई नहीं आये? पटेल। यह रामजीभाई। आते हैं? क्या कहा?

अनादि काल से क्रिया करता आता है। क्रिया चाहे जितनी करे। बहुत नाम आये न? परन्तु जब **आसन्नभव्यतारूपी गुण का उदय होने पर....** परन्तु उसे पहले यह लिया,

फिर गुरु का लिया। **आसन्नभव्यतारूपी गुण का उदय होने पर...** उसे मोक्ष के निकट जाने की योग्यता होने पर। आहाहा! है? **परमगुरु के प्रसाद से...** फिर परम गुरु का उपदेश मिला। कैसा उपदेश? कि **परमतत्त्व के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानस्वरूप...** आहाहा! यह उपदेश मिला। गुरु ने ऐसा उपदेश दिया।

**मुमुक्षु :** प्रसाद का अर्थ ही उपदेश मिला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह उपदेश मिला, बस, इतना। प्रसाद (कहकर) निमित्त से बात की है। उसे परम लाभ हुआ है, लाभ होनेवाला है; इसलिए उन्होंने प्रसाद शब्द प्रयोग किया है। **परमगुरु के प्रसाद से...** उससे मिल जाए - ऐसा नहीं है। उससे मिल जाए - ऐसा नहीं है। तीन लोक के नाथ हों तो भी उनके उपदेश की वाणी सुने तो विकल्प है और उससे कुछ मिले - ऐसा नहीं है। पण्डितजी! आहाहा! सिद्ध तो यह किया कि **आसन्नभव्यतारूपी गुण का उदय होने पर....**

**मुमुक्षु :** उसकी पात्रता बतायी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस, उसकी पात्रता पहले कही। वह पात्रता हुई और गुरु का उपदेश मिला। वह भी कैसा उपदेश मिला? - कि परम तत्त्व जो आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका अनुष्ठानरूप। **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा...** आहाहा! **निर्वाण को प्राप्त होता है...** आहाहा!

**मुमुक्षु :** पहले परम गुरु का प्रसाद आया, पश्चात् प्राप्त आया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह प्राप्त (कहा) परन्तु उसे प्रसाद कहा, इतना। प्राप्त यहाँ स्वयं ने किया। उन्होंने तो उपदेश दिया। **परमतत्त्व के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानस्वरूप...** उपदेश दिया, तब स्वयं अपने **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा...** शुद्ध निश्चयरत्नत्रयपरिणति द्वारा **निर्वाण को प्राप्त होता है...** उसके बल से प्राप्त करता है। गुरु के प्रसाद से नहीं। आहाहा! दो लाईनों में कितना... कितना! इसकी योग्यता, गुरु का उपदेश, वह किसका? - कि अन्तर आत्मतत्त्व का। वह फिर श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हुआ, स्वयं प्राप्त हुआ। **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा...** देखा न? गुरु के प्रसाद से नहीं। आहाहा! अन्दर की वस्तु तो ऐसी है।

**मुमुक्षु :** पुरुषार्थ पहले आया, परिणति पश्चात आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह पुरुषार्थ तब ही आया। तब गुरु का निमित्त कहलाया। आसन्न भव्यता पकी, तब गुरु का निमित्त कहलाया। तब निमित्त से भी उपदेश यह कहा। और वह जब इसे प्राप्त हुआ। **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा निर्वाण को प्राप्त होता है...** ऐसा कहा। आहाहा!

अपना भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका आचरण। यह अनुष्ठान कहा है। उसका अनुष्ठान—आचरण। उस द्वारा रत्नत्रय परिणति को... आहाहा! **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा...** आहाहा! मुक्ति को प्राप्त हुआ, वह शुद्धनिश्चयरत्नत्रय की परिणति द्वारा **निर्वाण को प्राप्त होता है...** ऐसे क्रियाकाण्ड से नहीं, परन्तु जब यह इसकी योग्यता अन्दर की होती है और उपदेश अच्छा मिलता है और जब शुद्धरत्नत्रय परिणमता है, तब मुक्ति मिलती है। आहाहा! ऐसा है। है न, देखो न!

**( अर्थात् कभी शुद्ध-निश्चयरत्नत्रयपरिणति को प्राप्त कर ले... )** कभी अर्थात? पहले यह सब बहुत किया। आहाहा! परन्तु **( कभी शुद्ध-निश्चयरत्नत्रयपरिणति को प्राप्त कर ले तो ही और तभी निर्वाण को प्राप्त करता है )।** आहाहा! स्व-आश्रय बिना मुक्ति की शुरुआत तीन काल में कहीं नहीं होती। स्व-आश्रय बिना सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। यह सिद्धान्त। 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ, छोड़ी (सकल) जात द्वंद्व फंद निज आतम उर ध्याओ।' छहढाला। यह छहढाला में आता है। आहाहा! फिर बात चाहे जो आवे। निमित्त हो, हो, व्यवहार निमित्त है, व्यवहार है, नहीं है - ऐसा नहीं है, परन्तु उसके लक्ष्य से मुक्ति पाता है-ऐसा नहीं है। आहाहा! उसके आश्रय से, निश्चय सम्यग्दर्शन भी उसके आश्रय से पाता है-ऐसा नहीं है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

अरे! जगत देखा। क्या किया? कैसा वेदन हुआ? विचार किया है इसने? आहाहा! यह सब छोड़कर फिर जब अच्छा उपदेश मिलता है, तो इसकी पात्रता होती है, जब इसे उपदेश अच्छा मिलता है, तब यह भी निश्चयरत्नत्रय द्वारा निर्वाण को पाता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! कठिन काम है, भाई! आहाहा! आनन्दघनजी कहते हैं एक बात। 'लही भव्यता मोटूं मान, कण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' तीन लोक के नाथ ऐसा

कहते हैं कि यह भव्य जीव है, मुक्ति के योग्य है—अब तुझे किसका मान चाहिए है? कहते हैं; और परमात्मा के मुख से ऐसा निकले कि यह जीव योग्य नहीं है—अब तुझे किसका अपमान चाहिए है? आहाहा! वस्तु तो सब अन्दर भरी है। आहाहा! उसकी श्रद्धा—परमतत्त्व की श्रद्धा। यहाँ नवतत्त्व की श्रद्धा नहीं कही। आहाहा! नवतत्त्व में भी परमतत्त्व की श्रद्धा, ज्ञान, अनुष्ठानस्वरूप शुद्धनिश्चयरत्नत्रय परिणति, शुद्धनिश्चयरत्नत्रय परिणति। तीन। परिणति अर्थात् अवस्था। उसके द्वारा निर्वाण को पाता है। आहाहा! यह गाथा पूरी हुई।

## श्लोक-२४५

**[ अब इस १४४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैंः ]**

**( हरिणी )**

**त्यजतु सुरलोकादिक्लेशे रतिं मुनिपुङ्गवो,**
**भजतु परमानन्दं निर्वाण-कारणकारणम्।**
**सकल-विमल-ज्ञानावासं निरावरणात्मकं,**
**सहज-परमात्मानं दूरं नयानय-संहतेः ।।२४५।।**

**( वीरछन्द )**

**हे मुनिवर! तुम स्वर्गादिक के क्लेशों के प्रति रति छोड़ो।**
**और मुक्ति के कारण का कारण जो निज परमात्म भजो॥**
**वह परमातम निर्मल ज्ञान निकेतन, आनन्द से भरपूर।**
**निरावरण है और सुनय अथवा दुर्नय समूह से दूर॥२४५॥**

**[ श्लोकार्थः ] मुनिवर देवलोकादि के क्लेश के प्रति रति छोड़ो और *निर्वाण के कारण का कारण ऐसे सहजपरमात्मा को भजो—कि जो सहजपरमात्मा परमानन्दमय**

* निर्वाण का कारण परमशुद्धोपयोग है और परमशुद्धोपयोग का कारण सहजपरमात्मा है।

**है, सर्वथा निर्मल ज्ञान का आवास है, निरावरणस्वरूप है तथा नय-अनय के समूह से ( सुनयों तथा कुनयों के समूह से ) दूर है॥२४५॥**

श्लोक -२४५ पर प्रवचन

**[ अब इस १४४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: ]**

**त्यजतु सुरलोकादिक्लेशे रतिं मुनिपुङ्गवो,**
**भजतु परमानन्दं निर्वाण-कारणकारणम्।**
**सकल-विमल-ज्ञानावासं निरावरणात्मकं,**
**सहज-परमात्मानं दूरं नयानय-संहतेः ।।२४५।।**

**श्लोकार्थः...** आहाहा! **मुनिवर...** आहाहा! **देवलोकादि के क्लेश के प्रति रति छोड़ो...** स्वर्ग में जाऊँगा, और फिर सेठाई मिलेगी और फिर राज मिलेगा... यह छोड़ दे, प्रभु! यह सब दु:ख है। स्वर्ग का भव दु:ख है। अरबोंपति सेठ, वे सब दु:खी प्राणी हैं। जितने पर के लक्ष्य को करनेवाले हैं, वे सब दु:खी हैं। एक सिद्धान्त। स्व का लक्ष्य छोड़कर जितना पर का लक्ष्य करता है, उतना विकार होकर दु:खी होता है। आहाहा! हे मुनिवर! स्वयं उपदेश करते हैं। **देवलोकादि...** सेठाई, राजा और बड़ा चक्रवर्ती पद, इस **क्लेश के प्रति रति छोड़ो...** यह तो क्लेश है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** पर के साथ सम्बन्ध हो, वह क्लेश ही है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह दु:ख ही है। असंगी तत्त्व है, उसे संग हुआ तो राग हुए बिना रहेगा ही नहीं। आहाहा! इसलिए कहा है कि संग छोड़ना, बहुत संग करना नहीं। लोक का परिचय छोड़ दे। विकल्प का जाल उत्पन्न होगा। आहाहा! ऐसा मार्ग। आहाहा!

**देवलोकादि के क्लेश...** देवलोक का क्लेश कहा। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि लोक में सुखी है, ऐसा भी कहीं कहेंगे। व्यवहारनय से ऐसा भी कहते हैं। आहाहा! यह आता है न, आता है। समाधिशतक में आता है, अष्टपाहुड़ में आता है अव्रत में रहने की अपेक्षा व्रत में (रहना ठीक है)। धूप में रहने की अपेक्षा छाया में ठीक है। आता है न!

आहाहा! अव्रत के पाप में... सम्यग्दृष्टि तो है ही। उसे अव्रत में रहने की अपेक्षा... आहाहा! व्रत में रहने में छाया है। परन्तु व्रती होवे कब? अकेला चौथा गुणस्थान रहे और व्रत होंगे? व्रत होवे, तब पाँचवाँ आता है। इसलिए अन्दर में स्थिरता बढ़ जाती है। आहाहा! यह ध्यान नहीं देता। उस व्रत के शब्द पर ध्यान देता है। अव्रत को तजकर व्रत करो। छूप तजकर छाया मिलेगी। परन्तु व्रत का विकल्प कौन से गुणस्थान में होता है? आहाहा! पाँचवें या छठे गुणस्थान में वह होता है। सातवें में वह नहीं होता, चौथे में नहीं होता। आहाहा! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **निर्वाण के कारण का कारण...** प्रभु! यह देवलोक, सेठाई और चक्रवर्तीपद तथा तीर्थंकरपद, इन सब भावों को रहने दे। परमतत्त्व की भावना, परमतत्त्व आनन्दस्वरूप भगवान... आहाहा! **निर्वाण के कारण का कारण...** निर्वाण का कारण मोक्ष का मार्ग, उसका कारण परमात्मतत्त्व। आहाहा! है? नीचे, **निर्वाण का कारण परमशुद्धोपयोग है और परमशुद्धोपयोग का कारण सहजपरमात्मा है।** कहीं निर्वाण का कारण मोक्ष सीधे नहीं, निर्वाण का कारण मूल तो भगवान आत्मा। मोक्ष के कारण का कारण आत्मा। उस आत्मा के आश्रय से मोक्ष का कारण होता है। वह कारण मोक्ष का कारण होता है। आहाहा!

**निर्वाण के कारण का कारण...** मोक्ष का कारण निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसका कारण... आहाहा! उसका कारण सहजपरमात्मा त्रिकाली वस्तु। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय, मोक्ष का कारण, परन्तु उस मोक्षमार्ग की पर्याय का कारण आत्मतत्त्व। आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है, बाहर से निवृत्ति लेकर एकाध घण्टे सुनना और कुछ समय मिलता हो, उसमें ऐसा? आहाहा! मोक्ष का कारण, उसका कारण। मोक्ष का कारण, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कारण, परमतत्त्व आत्मा। आहाहा! परम आत्मा भगवानस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता का अनुभव, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

**ऐसे सहजपरमात्मा को भजो**—देखा! निर्वाण के कारण का कारण ऐसा स्वाभाविक परमात्मा। ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप, वह ध्रुव। उसे भजो, वह पर्याय। **सहजपरमात्मा...** यह द्रव्य; उसे **भजो...** यह पर्याय। पर्याय बिना भजन नहीं होता क्योंकि द्रव्य तो ध्रुव है। ध्रुव

का भजन ध्रुव से नहीं होता। ध्रुव का भजन पर्याय से होता है। वह पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो कि मोक्ष का कारण है, उसका कारण परमतत्त्व है। आहाहा! **कि जो सहजपरमात्मा...** मोक्ष का कारण जो परमात्मा स्वयं। आहाहा! सहज शब्द प्रयोग किया है न? पर आत्मा नहीं, ऐसा। निज परमात्मा शब्द प्रयोग न करके सहज शब्द प्रयोग किया है। सहजपरमात्मा, ऐसा। स्वाभाविक परमात्मा स्वयं। आहाहा! नहीं तो ऐसा ले कि निजपरमात्मा का कारण मोक्ष का मार्ग और वह मोक्ष का कारण। परन्तु यहाँ कहा कि सहजपरमात्मा, स्वाभाविक वस्तु जो है, त्रिकाल है, जिसकी आदि नहीं, अन्त नहीं, उत्पत्ति नहीं। आहाहा! जिसे किसी की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो परमात्म (तत्त्व) निज सहज स्वाभाविक परमात्मा ध्रुव, उसे भजो। आहाहा! उसका भजन करो। दया, दान, भक्ति और बाहर का भजन-वजन, वह मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

**कि जो सहजपरमात्मा...** स्वाभाविक परमात्मा त्रिकाली, **परमानन्दमय है,...** वह परम आनन्दमय है। परम आनन्दवाला है, ऐसा भी नहीं। परम आनन्दवाला है, यह तो भेद पड़ा। वह तो परमानन्दमय है। स्वयं परमानन्दमय भगवान है आत्मा। आहाहा! त्रिकाली भगवान आत्मा, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, वह तत्त्व सहज परमानन्दस्वरूप है। आहाहा! सर्वत्र से उठा-उठाकर परमतत्त्व में आनन्द है, वहाँ नजर ले जाना, वह कहीं साधारण पुरुषार्थ है? आहाहा! अनन्त पुरुषार्थ है, अपूर्व पुरुषार्थ है, अचिन्त्य पुरुषार्थ है। आहाहा!

जो सहज परमात्मा निर्वाण के कारण का कारण है, उस परमानन्दमय-परम आनन्दस्वरूप ही वह तो है। परम आनन्दवाला है, ऐसा भी नहीं। वह तो परमानन्दमय प्रभु है। आहाहा! अतीन्द्रिय परमानन्दमय परमात्मा स्वयं है। अनादि-अनन्त स्वाभाविक; नहीं उत्पत्ति, नहीं नाश, नहीं अभाव, नहीं परिणमन, नहीं फेरफार। आहाहा! ऐसा जो सहज परमात्मतत्त्व आनन्द, वह **सर्वथा निर्मल ज्ञान का आवास है,...** आहाहा! वह सर्वथा निर्मल ज्ञान का आवास है। शास्त्रज्ञान और पठन ज्ञान, वह कोई निर्मल ज्ञान का आवास नहीं है। आहाहा! सर्वत्र से उठाकर वहाँ ले जाना है।

जो **सर्वथा निर्मल ज्ञान का आवास है,...** कथंचित् शास्त्रज्ञान कारण और कथंचित् आत्मतत्त्व, ऐसा भी नहीं। सर्वथा। अनेकान्त में सर्वथा नहीं होता न? होता है अनेकान्त में सर्वथा। **सर्वथा निर्मल ज्ञान का आवास है,...** आहाहा! जो परमानन्दमय है और उस

निर्मल ज्ञान का स्थान है। आवास अर्थात् निर्मल ज्ञान का वह स्थान है, निर्मल ज्ञान का धाम है। वह क्षेत्र तो निर्मल ज्ञान का क्षेत्र है। उसमें से तो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान पके, वह क्षेत्र है। आहाहा!

ऐसा निश्चय कठिन लगता है, इसलिए फिर एकान्त है... एकान्त है। प्रभु! एकान्त कह, भाई! बापू! तुझे दुःख होगा। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय से तो संसार मिलेगा, भव मिलेगा। व्यवहाररत्नत्रय तो कथनमात्र है। वह इसमें-नियमसार में आ गया। नियमसार में पहले (आ गया), व्यवहार तो कथनमात्र, कहने मात्र एक निमित्त की पहिचान देने के लिये है। उसमें क्लेश है। व्यवहाररत्नत्रय क्लेश, राग और दुःख है। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, पंच महाव्रत और शास्त्र के ज्ञान का विकल्प, वह सब दुःखरूप है। आहाहा! राग है न? पराश्रय है न? स्वाश्रय से सुख, पराश्रय से दुःख। स्वाश्रय से मोक्ष, पराश्रय से बन्ध। आहाहा! स्वाश्रय से संवर, पराश्रय से असंवर। स्व-आश्रय से निर्जरा, पराश्रय से बन्ध। आहाहा! स्व-आश्रय से मोक्ष, पराश्रय से बन्ध। शान्तिभाई! ऐसी बात है। आहाहा! ऐसा निश्चय कहें तो (ऐसा कहे), यह तो निश्चय है... यह तो निश्चय है। ऐसा करके (निकाल देते हैं), परन्तु निश्चय अर्थात्? प्रभु! तू ऐसा रहने दे। यह परमसत्य है, ऐसा ले। परमसत्य है। परमसत्य, वह त्रिकाली चीज़ है। जिसमें परम आनन्द और परम ज्ञान रहने का स्थान है। उस पर्याय में रहने का स्थान नहीं है। आहाहा! परमानन्द और परम ज्ञान के रहने का स्थान वह ध्रुव है। आहाहा! उसमें परम ज्ञान और परम आनन्द पड़ा है। आहाहा!

निर्जरा अधिकार में आता है न? रहनेवाले का स्थान है। आहाहा! जिसे स्थिर होना हो, उसके लिये रहने का स्थान यह है। अन्दर जमकर रहना हो तो यह आत्मा रहनेवाले का आवास यह पाठ है। ऐसा निर्जरा अधिकार में पाठ है। आहाहा! जिसे रहना है, जिसे उसमें से हटना नहीं, जिसमें से चंचलता करके डोलायमान नहीं होना, उसके रहने के लिये वह आवास है। ऐसे रहनेवाले को आवास है। आहाहा! ऐसी भाषा कभी सुनी नहीं होगी, लो! बाहर की सिरपच्ची। एक नहीं, सबको ऐसा है न, बापू! आहाहा! अरे! दूसरी बात है, बापू!

यह तो शान्तमार्ग है, शान्तिमार्ग है। इसमें कषाय के विकल्प के दुःख की उत्पत्ति वह संसार का कारण है। आहाहा! ऐसा शान्तरस से भरपूर भगवान, वह ज्ञान को रहने का स्थान है। ज्ञान वहाँ रहता है। शान्त सागर में ज्ञान रहता है। उस विकल्प में और राग में ज्ञान

नहीं रहता। आहाहा! विकल्प से चाहे जितना पठन कर, वह ज्ञान को रहने का आवास नहीं है। वह तो नाश को प्राप्त हो जाएगा। निगोद में जाएगा तो सब समाप्त हो जाएगा। आहाहा! ग्यारह अंग और नौ पूर्व का पठन (परन्तु) स्व के आश्रय बिना निगोद में जाएगा, वहाँ अक्षर के अनन्तवें भाग हो जाएगा और उसमें से निकलकर आयेगा, तब ग्यारह अंग और नौ पूर्व का हो जाएगा। परन्तु दोनों कहीं रहनेवाले का स्थान नहीं है। आहाहा! एक अक्षर के अनन्तवें भाग की पर्याय और नौ पूर्व का ज्ञान वह रहनेवाले का स्थान नहीं है, प्रभु! आहाहा! गजब बात है न! शान्तिभाई! पूरे दिन पैसा और धन, हीरा और माणिक में। उसमें यह बात कहाँ अन्दर (प्रवेश करे)? आहाहा!

**मुमुक्षु :** आपकी बात सुनते हैं, तब ठीक लगता है, घर में जाते हैं, तब भूल जाते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! शान्ति का सागर। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति नाम है न, यह तो शान्तिसागर है। आहाहा!

जहाँ उद्वेग नहीं, जहाँ से हटना नहीं, जिसमें चिन्ता नहीं। आगे आयेगा। चिन्ता, वह संसार है, आगे आयेगा। फिर कहीं है। कहीं है अवश्य। २४६ में ही आता है। २४६ (श्लोक) की अन्तिम लाइन। २४६ (श्लोक) की अन्तिम लाइन। **जब तक जीवों को चिन्ता ( विकल्प ) है, तब तक संसार है।** २४६ की एकदम अन्तिम (लाइन)। अन्तिम कलश। २४६वाँ कलश है न? उसमें भी अन्तिम लाइन। १४६ (गाथा) होने से पहले, १४५ का, २४६ तो कलश है। हों, परन्तु १४६ गाथा, उसके ऊपर, आहाहा! **जब तक जीवों को चिन्ता ( विकल्प ) है...** है? आहाहा! १४६ गाथा के ऊपर एकदम गाथा के ऊपर एक ही लाइन। आहाहा!

**जब तक जीवों को चिन्ता ( विकल्प ) है, तब तक संसार है।** आहाहा! यह चिन्ता, वह संसार, विकल्प वह संसार है। आहाहा! संसार यह स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, मकान, यह संसार नहीं है, क्योंकि संसार, वह जीव की पर्याय है, तो संसार जीव से भिन्न नहीं रहता। क्या कहा? स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, स्त्री, पुत्र, मकान, पैसा यह संसार नहीं है। यह तो (पर) चीज़ है। संसार तो दोष है। वह संसार तो जीव की दोष अवस्था है। पैसा और स्त्री, पुत्र, वह संसार नहीं है। आहाहा! समझ में आया? चिन्ता विकल्प है, वह संसार है। संयोग जो चीज़ है, वह संसार नहीं। भले करोड़ों, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों और छियानवें करोड़

गाँव हो, वह संसार नहीं है। उनके प्रति चिन्ता और ममता और विकल्प, वह संसार है। आहाहा! ऐसी बात है।

**सहजपरमात्मा परमानन्दमय है, सर्वथा निर्मल ज्ञान का आवास है, निरावरणस्वरूप है...** अपना चलता श्लोक। **निरावरणस्वरूप है...** अत्यन्त निरावरण। द्रव्यस्वरूप को आवरण होता ही नहीं। द्रव्य को आवरण होवे तो अद्रव्य हो जाए। आहाहा! **तथा नय-अनय के समूह से (सुनयों तथा कुनयों के समूह से) दूर है।** सुनय से भी दूर है। आहाहा! नयातीत है। त्रिकाली द्रव्य-वस्तु परम शान्ति के रस से भरपूर सागर, जिसमें कषाय के विकल्प की चिन्ता, द्रव्य-गुण-पर्याय की भी नहीं। यह इसमें आयेगा। अब आयेगा। जिसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीन की चिन्ता का विकल्प भी नहीं है। अपने, हों! पर के तो नहीं परन्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसे तीन की भी चिन्ता है, वह विकल्प है। आहाहा! पर की तो बात क्या करना? कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, इज्जत, धूल और... आहाहा! परन्तु वहाँ दुकान पर बैठा हो तो मजा आता है। पच्चीस-पच्चीस व्यक्ति काम करनेवाले, हीरा घिसनेवाले और एक-एक को सात सौ-आठ सौ-हजार रुपये पड़ें, ऐसे पच्चीस व्यक्ति इसके घर में हैं। हीरा का काम करनेवाले। अब अभिमान चढ़ जाए या नहीं इसमें? अन्दर पावर चढ़ जाए या नहीं?

**मुमुक्षु :** सब छोड़ दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बन्द किया? बन्द कर दिया? तब आये थे, तब कहा था। दुकान में आये थे कमरे में। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का वचन है कि हम हैं, उसकी चिन्ता भी संसार है। हम हैं, ऐसा जो तुझे विकल्प उठता है, वह चिन्ता है, वह संसार है। आहाहा! यह वीतराग कहते हैं। वीतराग के अतिरिक्त किस जगह ऐसी बात करे... आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग परमशान्त का मूल प्रभु, ऐसा कहते हैं प्रभु! तेरे द्रव्य में स्थिर हो न! हमारे सन्मुख देखेगा तो तुझे दुःख होगा... विकल्प होगा, दुःख होगा। आहाहा! हमारी भक्ति से भी तुझे दुःख होगा। आहाहा! तुझमें जा न, तुझे शान्ति मिलेगी। कि जहाँ शान्ति पड़ी है। हमारी ओर देखने से हमारी शान्ति तेरे पास है? तो तुझे शान्ति कहाँ से मिलेगी? आहाहा! तू हमारे सामने भजन करे तो हमारी शान्ति तेरे पास है? वह तो हमारे पास है। हमारे ऊपर नजर

करेगा, तो तुझे राग होगा। आहाहा! ऐसा सुनना मुश्किल पड़े। उपदेश ही सब बाहर का। घोड़ाघोड़। आहाहा!

अरे! प्रभु! तू कौन है? निरावरण है न, नाथ! परमानन्दमय है न! सम्यक् निर्मल ज्ञान को रहने का आवास है न! आहाहा! और नय तथा अनय का भी तू विषय नहीं है। उसके समूह से तू दूर है। आहाहा! विकल्पवाला नय लेना। नहीं तो 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की'—यह समयसार में आता है। वहाँ वह निर्विकल्प नय है। यह है, वह विकल्पवाला नय है। आहाहा!

निश्चयनय के भी दो भेद हैं : एक विकल्प-रागवाला नय और एक रागरहित नय। रागवाला नय, वह कल्याण का कारण नहीं है। रागरहित नय जो अनुभव में जाता है, एकाकार होता है। 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की' ऐसा पाठ है। वह निर्विकल्पनय है। आहाहा! किस जगह किस अपेक्षा से कथन है, क्या कहना चाहते हैं? ऐसा समझना न चाहे और अपनी दृष्टि से बात की खतौनी कर डाले तो सब उल्टा पड़ता है। कहीं मिलान नहीं खाये।

## गाथा-१४५

दव्वगुणपज्जयाणं चित्तं जो कुणइ सो वि अण्णवसो।
मोहंधयार-ववगय-समणा कहयंति एरिसयं।।१४५।।

द्रव्यगुणपर्यायाणां चित्तं यः करोति सोऽप्यन्यवशः।
मोहान्धकार-व्यपगत-श्रमणाः कथयन्तीदृशम्।।१४५।।

अत्राप्यन्यवशस्य स्वरूपमुक्तम्। यः कश्चिद् द्रव्यलिङ्गधारी भगवदर्हन्मुखारविन्द-विनिर्गतमूलोत्तरपदार्थसार्थप्रतिपादनसमर्थः क्वचित् षण्णां द्रव्याणां मध्ये चित्तं धत्ते, क्व-चित्तेषां मूर्तामूर्तचेतनाचेतनगुणानां मध्ये मनश्चकार, पुनस्तेषामर्थव्यञ्जनपर्यायाणां मध्ये बुद्धिं करोति, अपि तु त्रिकालनिरावरणनित्यानन्दलक्षणनिजकारणसमयसारस्वरूपनिरत-सहजज्ञानादिशुद्धगुणपर्यायाणामाधारभूतनिजात्मतत्त्वे चित्तं कदाचिदपि न योजयति, अत एव स तपोधनोऽप्यन्यवश इत्युक्तः। प्रध्वस्तदर्शनचारित्रमोहनीयकर्मध्वान्तसङ्घाताः परमात्मतत्त्वभावेनोत्पन्न-वीतरागसुखामृतपानोन्मुखाः श्रमणा हि महाश्रमणाः परमश्रुत-केवलिनः, ते खलु कथयन्तीदृशं अन्यवशस्य स्वरूपमिति।

तथा चोक्तं ह्न

( अनुष्टुप् )

आत्मकार्यं परित्यज्य दृष्टादृष्टविरुद्धया।
यतीनां ब्रह्मनिष्ठानां किं तया परिचिन्तया।।

तथाहि ह्न

---

जो जोड़ता चित द्रव्य-गुण-पर्याय-चिन्तन में अरे!
रे मोह-विरहित-श्रमण कहते अन्य के वश ही उसे॥१४५॥

अन्वयार्थ : [ यः ] जो [ द्रव्यगुणपर्यायाणां ] द्रव्य-गुण-पर्यायों में ( अर्थात् उनके विकल्पों में ) [ चित्तं करोति ] मन लगाता है, [ सः अपि ] वह भी [ अन्यवशः ]

अन्यवश है; [ मोहांधकारव्यपगतश्रमणाः ] मोहान्धकार रहित श्रमण [ ईदृशम् ] ऐसा [ कथयन्ति ] कहते हैं।

टीका : यहाँ भी अन्यवश का स्वरूप कहा है।

भगवान अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए ( कहे गये ) मूल और उत्तर पदार्थों का सार्थ ( -अर्थसहित ) प्रतिपादन करने में समर्थ ऐसा जो कोई द्रव्यलिंगधारी ( मुनि ) कभी छह द्रव्यों में चित्त लगाता है, कभी उनके मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन गुणों में मन लगाता है और फिर कभी उनकी अर्थपर्यायों तथा व्यंजनपर्यायों में बुद्धि लगाता है परन्तु त्रिकाल-निरावरण, नित्यानन्द जिसका लक्षण है, ऐसे निजकारण-समयसार के स्वरूप में लीन सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत निज आत्मतत्त्व में कभी भी चित्त नहीं लगाता, उस तपोधन को भी उस कारण से ही ( अर्थात् पर विकल्पों के वश होने के कारण से ही ) अन्यवश कहा गया है।

जिन्होंने दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मरूपी तिमिरसमूह का नाश किया है और परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न वीतरागसुखामृत के पान में जो उन्मुख ( तत्पर ) हैं, ऐसे श्रमण वास्तव में महाश्रमण हैं; परम श्रुतकेवली हैं; वे वास्तव में अन्यवश का ऐसा ( उपरोक्तानुसार ) स्वरूप कहते हैं।

इसी प्रकार ( अन्यत्र श्लोक द्वारा ) कहा है कि:—

( वीरछन्द )

आत्मकार्य से जो विरुद्ध प्रत्यक्ष-परोक्ष विकल्पों से।
ब्रह्मनिष्ठ यतियों को कहो प्रयोजन क्या है चिन्ता से॥

'[ श्लोकार्थः ] आत्मकार्य को छोड़कर दृष्ट तथा अदृष्ट से विरुद्ध ऐसी उस चिन्ता से ( -प्रत्यक्ष तथा परोक्ष से विरुद्ध ऐसे विकल्पों से ) ब्रह्मनिष्ठ यतियों को क्या प्रयोजन है ?'

गाथा - १४५ पर प्रवचन

१४५ गाथा

**दव्वगुणपज्जयाणं चित्तं जो कुणइ सो वि अण्णवसो।**
**मोहंधयार-ववगय-समणा कहयंति एरिसयं।।१४५।।**

**जो जोड़ता चित द्रव्य-गुण-पर्याय-चिन्तन में अरे!**

आहाहा! अब अपना लिया। पर का सब छुड़ाया। पर की तो बात छुड़ायी। अब स्व में आये। स्व में भी भेद करे, वह भी विकल्प-राग है। आहाहा! है?

**जो जोड़ता चित द्रव्य-गुण-पर्याय-चिन्तन में अरे!**
**रे मोह-विरहित-श्रमण कहते अन्य के वश ही उसे॥१४५॥**

मोहरहित सर्वज्ञ परमात्मा उसे परवश कहते हैं। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ प्रभु (ऐसा फरमाते हैं), तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय के तीन भेद के विचार में रुकने से तू परवश है, स्ववश नहीं। आहाहा! गजब है। परद्रव्य को तो निकाल दिया। आहाहा! क्योंकि परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने से तो राग ही होगा। अब स्वद्रव्य में आया, उसमें भी तीन भेद में पड़ा। द्रव्य में अकेले द्रव्य के अन्दर एकाग्र न होकर द्रव्य, गुण और पर्याय की चिन्ता में जुड़ा, तो विकल्प होगा, दुःखी होगा, राग होगा। आहाहा! निज द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार में भी दुःखी होगा। वह शुभभाव है, दुःख है। आहाहा! शान्तिभाई! कभी सुना नहीं, वहाँ मुफ्त का समय निकाला पाप में। आहाहा! निज द्रव्य-गुण-पर्याय तीन भेद करे तो भी परवश है, राग है, चिन्ता है, विकल्प है, संसार है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** घर का काम करना हो, उसका क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** घर का कौन करता है? कौन कर सकता है? एक हाथ फिरा नहीं सकता, आँख की पलक फिरा नहीं सकता। आहाहा! एक पलक को ऐसे से ऐसे तीन काल में नहीं कर सकता। ऐसी पलक ऊँची है, उसे नीची आत्मा तीन काल में नहीं कर सकता। उस पलक के परमाणु अनन्त हैं, उसकी उस समय में पर्याय होनेवाली, वह होती है। आहाहा! आत्मा उसे तीन काल में नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

परमात्मा, पंच परमेष्ठी, वह तो छुड़ाया, हमारी ओर से तो छूट जा, प्रभु! क्योंकि हम तो तेरे द्रव्य से परद्रव्य—दूसरे हैं। एकड़े एक और बिगड़े दो। यदि दूसरा लक्ष्य में लिया तो बिगड़ेगा, राग होगा। वह तो एक ओर रहा परन्तु यहाँ वस्तु एकरूप है, उसमें तीन भेद डालेगा तो बिगड़ेगा। आहाहा! वस्तु एकरूप त्रिकाल चिदानन्द अनन्त आनन्द का कन्द है। आहाहा! उसमें भी यदि द्रव्य-गुण और पर्याय (ऐसे) तीन भेद किये तो चिन्ता खड़ी होगी और वह चिन्ता संसार है, ऐसा वीतराग कहते हैं। दुनिया इससे अटक जाए, दुनिया को ठीक लगेगा या नहीं? झेल सकेंगे या नहीं? वीतराग को कुछ नहीं पड़ी है। यह तो तो वाणी आ गयी, वह आ गयी। उन्हें कहाँ वाणी करना है। आहाहा! वाणी आ गयी, वह आ गयी। मात्र वाणी में केवलज्ञान निमित्त था। निमित्त था, वह कहीं पर को करता नहीं। आहाहा! यह वाणी दिव्यध्वनि में भी भगवान के ज्ञान ने कुछ किया नहीं। भगवान के ज्ञान ने वाणी में कुछ नहीं किया। आहाहा! वाणी को ज्ञान ने स्पर्श भी नहीं किया। पण्डितजी! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! प्रभु! तू एकरूप है न! पर से तो निराला है न, नाथ! तू एकरूप द्रव्य-वस्तु है न! वह वस्तु और अन्दर गुण और उस वस्तु की पर्याय, ऐसे तीन भेद करेगा तो चिन्ता होगी, विकल्प होगा, दुःखी होगा। आहाहा! यह वीतराग कहते हैं। आहाहा!

१४५ की **टीका : यहाँ भी अन्यवश का स्वरूप कहा है। भगवान अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए...** और कैसे शब्द?—कि भगवान के मुख से निकले हुए। आहाहा! अज्ञानी के भी नहीं। आहाहा! **भगवान अर्हत् के मुखारविन्द से...** अरविन्द अर्थात् कमल। मुखरूपी कमल से **निकले हुए ( कहे गये ) मूल और उत्तर पदार्थों का सार्थ ( -अर्थसहित ) प्रतिपादन करने में समर्थ...** आहाहा! ऐसे पदार्थों का—मूल और उत्तर पदार्थों का अर्थसहित कहने में, करने में समर्थ। **ऐसा जो कोई द्रव्यलिंगधारी ( मुनि )...** आहाहा! वह द्रव्यलिंगी मुनि हुआ है। आहाहा! भगवान ने कहे हुए द्रव्य-गुण और पर्याय जो पदार्थ है, उसे जो कहने में समर्थ, ऐसा कोई द्रव्यलिंगी साधु। कहने में समर्थ है, ऐसा कोई द्रव्यलिंगी। आहाहा!

**( मुनि ) कभी छह द्रव्यों में चित्त लगाता है,...** कभी छह द्रव्यों में चित्त को लगाता है, वह विकल्प-चिन्ता है। आहाहा! यह तो व्रत से धर्म हो और दया से धर्म हो, ऐसा व्याख्यान में-भाषण में रखा हो। शान्तिभाई! सब (ऐसे हैं)। एक नहीं, तुम्हारी बात नहीं।

यह तो तुम सामने बैठे हो, इसलिए तुम्हारी बात (होती है)। बाकी सब यही करते हैं न! आहाहा! यह वस्तु...

परद्रव्य, परमेश्वर कहते हैं कि मैं तो नहीं। हम तो तुझसे परद्रव्य हैं। इसलिए हमारे ऊपर नजर जाएगी, तो प्रभु! तुझे मोह होगा, राग होगा। आहाहा! परन्तु प्रभु! तू है न। एकरूप चिदानन्द आनन्दकन्द है, उसमें भी यदि तीन भेद डालकर विचार करेगा कि यह अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य है और गुण, वह शक्ति है और पर्याय, वह अवस्था है। आहाहा! अन्तिम में अन्तिम लिया, पण्डितजी! आहाहा! उसमें प्रभु! तुझे निर्विकल्पता नहीं होगी। यह द्रव्य-गुण और पर्याय के तीन भेद डालेगा तो तुझे चिन्ता होगी, प्रभु! उस चिन्ता (से) तू दुःखी होगा। आहाहा!

**छह द्रव्यों में चित्त लगाता है,...** परन्तु किसने कहे हुए? भगवान ने कहे हुए, हों! अन्यमति के कहे हुए और अज्ञानी के कहे हुए उन शब्दों की बात ही नहीं है। आहाहा! वास्तव में तो यहाँ श्वेताम्बर के बनाये हुए सूत्रों की भी बात नहीं है। यह तो **भगवान अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए...** तीन लोक के नाथ के मुख में से निकली हुई वाणी। श्वेताम्बर की वाणी वह कहीं भगवान की वाणी नहीं है। प्रभु! किसी को दुःख लगे तो क्षमा करना। आहाहा! दूसरा क्या हो? मार्ग तो जो है, वह है। आहाहा! यह हमारा मत खोटा? हमारा श्वेताम्बर मत खोटा? ऐसा हो जाता है। भाई! खोटा क्या? यहाँ तो एक द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का विचार करे तो भी विकल्प खोटा, वह (भी) भगवान ने कहे हुए द्रव्य-गुण-पर्याय। तीन लोक के नाथ के मुख में से निकली हुई वाणी। श्वेताम्बर के शास्त्र तो (उनके) आचार्यों ने कल्पित बनाये हैं। इसलिए उन्हें वे फिराते हैं, उसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। आहाहा! बहुत स्पष्ट करने जाए तो...

**भगवान अर्हत् के मुखारविन्द से...** मुखरूपी कमल, उसमें से दिव्यध्वनि खिरी। यह निमित्त से कथन है। (वाणी) मुख से नहीं निकलती। वाणी तो पूरे शरीर में से निकलती है, परन्तु लोगों की भाषा ऐसी है न, इसलिए इस प्रकार से रचा है। नहीं तो वह तो भगवान का मुख कहीं हिलता नहीं। पूरे शरीर में से ओम्ध्वनि उठती है। पूरे शरीर में से ओम्ध्वनि (उठती है) होंठ बन्द, यह सब बन्द, कण्ठ हिले नहीं, होंठ हिले नहीं। परन्तु लोग समझते हैं न, उस भाषा से (कहा है)। **मुखारविन्द से निकले हुए...** ऐसा शब्द

प्रयोग किया है। मुखरूपी कमल से निकले हुए। आहाहा! बाकी तो पूरे शरीर में से ओम्ध्वनि निकलती है। जो ओमध्वनि उठती है, वह तो पूरे शरीर में से उठती है। असंख्य प्रदेश में से ओम्ध्वनि उठती है। आहाहा! उनकी ध्वनि में जो कोई द्रव्य-गुण और पर्याय परमात्मा की वाणी में जो आये, भगवान ने जो कहे, उनमें जो द्रव्य में चित्त जोड़ेगा। छह द्रव्य भगवान ने कहे हैं। श्वेताम्बर पाँच द्रव्य मानते हैं। कालद्रव्य नहीं मानते। खबर है न, उसकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा! दूसरे को दुःख लगे बेचारे को। क्या हो? सत्य वस्तु तो यह है। जिसने कालद्रव्य नहीं माना, वह जैन नहीं है। जैन के मुख में से तो छह द्रव्य निकले हैं। वीतराग महावीर के मुख से तो छह द्रव्य निकले हैं। आहाहा! कठिन बात है। शान्तिभाई! तुम्हारा पन्थ कहीं रह गया। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऊपर की गाथा में बदनारविंद लिखा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बदन-मुख दोनों एक ही है। वह तो सब एक ही है। भाषा ऐसी आती है परन्तु बदन से नहीं निकलती, पूरे शरीर से निकलती है। समझ में आया? यह तो ओम् का अनुभव है। पूरे शरीर में से उठा था। पूरे शरीर में से ओम् उठा था। शरीर बन्द, होंठ सब बन्द था। ओम् ध्वनि अन्दर से उठी। वह तो यहाँ उठी। भगवान का है, वह उठी थी अन्दर से। आहाहा! भगवान के मुख में से जो ओम् निकले, वह पूरे शरीर में से निकलता है। बदन से और मुख से यह कथनशैली-जगत् की शैली है, इस अपेक्षा से बोला जाता है। आहाहा!

यह **द्रव्यलिंगधारी...** आहाहा! नग्न-मुनि की बात, हों! नग्न-मुनि है, दिगम्बर है। राज छोड़ा है, परद्रव्य छोड़ा है, अन्तर द्रव्य-गुण-पर्याय में छह द्रव्य में चित्त लगाता है, वह पराधीन है। कभी सुना नहीं, यह बाप-दादा ने पहले। आहाहा! **छह द्रव्यों में चित्त लगाता है, कभी...** कभी न? **कभी उनके मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन गुणों में मन लगाता है...** छह द्रव्य हैं न? एक चेतन है और पाँच अचेतन हैं। उनमें मन को लगाता है। आहाहा! **और फिर कभी उनकी अर्थपर्यायों...** उनकी आकृति / व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त। प्रदेशत्वगुण की व्यंजनपर्याय के अतिरिक्त सभी गुणों की अर्थपर्याय। व्यंजनपर्याय प्रदेशगुण की पर्याय-व्यंजन-द्रव्य की आकृति। उसमें **बुद्धि लगाता है...** अर्थपर्याय में और व्यंजनपर्याय में बुद्धि को लगाता है। आहाहा!

**परन्तु त्रिकाल-निरावरण, नित्यानन्द जिसका लक्षण है...** नित्यानन्द जिसका लक्षण है। पर्याय आनन्द, ऐसा नहीं। **नित्यानन्द जिसका लक्षण है, ऐसे निजकारण-समयसार के स्वरूप में...** यहाँ निज आया। उसमें ऐसा कहा, सहज। उसमें कहा था न? सहज कहा था। **निजकारणसमयसार के स्वरूप में लीन सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत...** आहाहा! निजकारणसमयसार के स्वरूप में लीन। कौन लीन? निजकारण-समयसार स्वरूप में कौन लीन? **सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों...** आहाहा! ऐसे **लीन सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत...** आहाहा! ऐसी बातें अब। उपदेश... निजकारणसमयसार ऐसा भगवान कायम का समय, उसमें लीन। क्या लीन? स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, आनन्द शुद्धगुणपर्यायों में लीन है, वह तो एकाकार है। आत्मा में-कारणसमयसार में गुण-पर्याय तो एकाकार अभेद है। आहाहा! उनका जो **आधारभूत निज आत्मतत्त्व...** आहाहा! **निजकारणसमयसार के स्वरूप में लीन सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत निज आत्मतत्त्व में कभी भी चित्त नहीं लगाता,...** आहाहा!

**मुमुक्षु :** पर्याय को अन्दर समाहित कर दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय अभेद लीन हो गयी है। द्रव्य में लीन, द्रव्य में लीन।

**मुमुक्षु :** शुद्ध गुण-पर्याय...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** द्रव्य में लीन। भेद नहीं। काम करे पर्याय से, परन्तु है सब द्रव्य में लीन। द्रव्य से भिन्न कहा है। यहाँ अभी यह लेना है न! लीन कहा न?

**सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत निज आत्मतत्त्व में कभी भी चित्त नहीं लगाता, उसे तपोधन को भी उस कारण से ही...** उसे उस कारण से **( अर्थात् पर विकल्पों के वश होने के कारण से ही ) अन्यवश कहा गया है।** वह भी पराधीन, परवश है, दुःखी है। वह विकल्प के वश है, आत्मा के वश नहीं। विशेष कहेंगे...

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)